परिच्छेद - एकादश

उ प सं हा र

"मैं एक ऐसे भारत को बनाऊंगा, जिसमें गरीब से गरीब भी यह अनुभव करेंगे कि यह उनका देश है, जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व है, जिसमें ऊंच-नींच नहीं होगी, जिसमें सभी समुदाय पूरी तरह मिल-जुलकर सहकारिता से काम करेंगे।.. हम सारे संसार के साथ शांति और मेल रखेंगे। न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न अपना शोषण होने देंगे।

-महात्मा गाँधी

परिच्छेद-ग्यारह

अवलोकन बिन्दु

वृहताकार आदिम जाति बहुउद्देशीय सहकारी समितियों (लैम्पुस) की स्थापना आदिवासी समुदाय के लिए हर प्रकार की सहकारी सेवाओं को एक ही स्रोत से उपलब्ध कराने की एक महत्वाकांक्षी योजना के अन्तर्गत की गयी थी, फलस्वरूप इसके अन्तर्गत कृषि ऋण, उपभोक्ता वस्तुएं, कृषि आदान, विपणन, वनोपज व्यापार, कुटीर उद्योग, सामाजिक सेवाएं एवं अन्य विभिन्न प्रकार की हर संभव सेवाओं को उद्देश्यों के रूप में सम्मिलित किया गया। अनेक मूल्यांकन अध्ययनों में इन समितियों की आशानुकूल सफलता नहीं प्राप्त हुई है, ऐसे निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

शोधकर्ता ने अपने अध्ययन के दौरान लैम्पुस संस्थाओं के कार्य व्यवहार एवं उनके द्वारा आदिवासी समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति से संबंधित विभिन्न साक्ष्यों से यह अनुभव किया कि इस महत्वपूर्ण विषय के अनेक पक्ष अभी तक अनुद्घाटित हैं। ऐसे पक्षों पर और अधिक शोध की आवश्यकता है। इन संस्थाओं के अनेक कार्यक्षेत्र अभी भी उपेक्षित पड़े हैं। इन कार्यक्षेत्रों में संस्थाओं की गतिविधियों को अधिक सक्रिय करने की आवश्यकता है। शोधकर्ता के इस प्रकार के अवलोकित बिन्दु क्रमानुसार नीचे प्रस्तुत है :-

(1) आदिवासी अंचलों में कृषि पद्धति मूलतः जीवन-निर्वाह पद्धति है जिसमें फसल उगाने का उद्देश्य उपभोग परक होता है। अनेक पंचवर्षीय योजनाओं के क्रियान्वयन के पश्चात् अब धीरे-धीरे इन क्षेत्रों में भी कृषि पद्धति में व्यावसायिकता का अत्यल्प असर दिखाई पड़ता है। सहकारिताएं कृषि पड़तों एवं उन्नत तकनीक युक्त उपकरणों की आपूर्ति तथा समयानुसार कृषि वित्त की व्यवस्था व्दारा परिवर्तन के इन संकेतों को आकार पूर्ण उपलब्धिओं में बदल सकती है। इसके लिए आदिवासी क्षेत्रों में कृषकों व्दारा विभिन्न उत्पादक संसाधनों की वास्तविक मांग, सहकारिताओं समेत विभिन्न साख-संस्थाओं व्दारा उस मांग की पूर्ति की मात्रा तथा इन दोनों के बीच व्याप्त अंतरालों को मापने की महती आवश्यकता है। 200 सदस्य परिवारों एवं 200 गैर सदस्य परिवारों के एक छोटे से न्यादर्श के आधार पर शोधकर्ता ने अध्ययन क्षेत्र में कृषि वित्त की मांग और पूर्ति की मात्रा और तज्जनित अंतरालों की माप का प्रयास किया है। यह प्रयास अपनी अत्यंत लघु परिधि में पूरी तरह सार्थक सिद्ध हुआ। शोधकर्ता यह अनुभव करता है कि

आदिवासी क्षेत्रों में इस प्रकार के अध्ययनों का अत्यधिक महत्व है जिनकी व्यावहारिक उपादेयता है। आदिवासी समाज की पूंजी संरचना बचत और साख आवश्यकताओं संबंधी यथार्थ समंकों का अत्यंत अभाव है। अतः शोधकर्ता इस बिन्दु पर विवेचकों का ध्यान आकृष्ट करता है और इसके विभिन्न पक्षों पर सार्थक शोध की आशा करता है। शोधकर्ता की दृष्टि में यदि आदिवासी इलाकों में इन परिवारों के आय-व्ययों तथा उनके व्यवहार संबंधी सर्वेक्षण किये जाते हैं तथा वास्तविक सूचनाओं के आधार पर लेम्पुस के उद्दश्यों एवं कार्यों को संचालित किया जाता है तो इससे निश्चित ही सार्थक परिणाम प्राप्त होंगे।

(2) आदिवासी अर्थव्यवस्था आधारभूत रूप से कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। 1991 की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश की आदिवासी जनसंख्या के कुल मुख्य कर्मियों का 92.69 प्रतिशत भाग काश्तकारी और कृषि मजदूरी कार्यों में लगा हुआ रहा। आदिवासी काश्तकारों को अपनी मेहनत से कमायी फसल का उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता। उनकी फसल का लाभ बिचौलियों या बड़े दुकानदारों को मिलता है जो उनसे उनकी फसल कम कीमत पर खरीद लेते हैं। कृषि विपणन की समस्याएं आदिवासी कृषि प्रक्षेत्र की गंभीर समस्याओं में प्रमुख है। लैम्पुस संस्थाओं की स्थापना के पीछे एक उद्देश्य इन संस्थाओं व्दारा आदिवासी और कमजोर वर्ग के उत्पादकों के लिए विपणन का लाभकारी माध्यम उपलब्ध कराना था, परन्तु अपने अध्ययन के क्रम में शोधकर्ता ने यह अनुभव किया कि सदस्यों के उत्पादों के विपणन का कार्य लैम्पुस संस्थाओं में पूर्णतः उपेक्षित रहा। केवल कुछ वनोपज उत्पादनों को छोड़कर अपने सदस्यों के उत्पादों को सहकारिता के माध्यम से बेचकर उत्पादकों को लाभ पहुंचाने की नीति लैम्पुस संस्थाओं के व्दारा उपयोग में नहीं लायी गयी है। शोधकर्ता यह अनुभव करता है कि इस प्रकार के सहकारी विपणन की संभावनाओं का यथार्थ आकलन किया जाना चाहिये और सहकारिताओं को इस क्षेत्र में अपनी पूर्ण भूमिका का निर्वाह करना चाहिये। शोधकर्ता भविष्य में उस परिदृश्य की कल्पना करता है जिसमें किसी भी गांव के छोटे-बड़े किसान अपनी उपजों को सीधे नहीं बेच कर सहकारी संस्थाओं के माध्यम से बेच रहे होंगे। और अपनी फसलों की पूरी कीमत प्राप्त कर रहे होंगे। ऐसे आर्थिक वातावरण में ग्रामीण उत्पादकों की निरन्तर समृद्धि हो सकती है। अतः शोधकर्ता की राय में लैम्पुस संस्थाओं को इस क्षेत्र में अपनी गतिविधियों का विस्तार करना चाहिये और इस विषय के अध्येताओं को इस प्रकार के प्रयोगों के प्रभावों पर शोध कर इसे और अधिक प्रभावशाली बनाने संबंधी सुझाव प्रस्तुत करना चाहिये।

(3) लैम्पुस संस्थाओं में कर्मिकों की पर्याप्त संख्या का अभाव और कर्मिकों के बीच अनुकूलतम कार्य विभाजन का अभाव उसकी प्रबंधगत कुशलता के मुख्य बाधक तत्व रहे हैं। कार्मिकों एवं प्रबंध का प्रश्न सहकारिता विषय के अध्येताओं के मस्तिष्क को प्रारंभ से ही आन्दोलित करता रहा है। किसी भी मानवीय संगठन की सफलता वहाँ कार्यरत मानव संसाधन पर निर्भर होती है। भारतीय सहकारिताओं का यह दुर्भाग्य रहा है कि यहाँ सहकारिताओं में कभी भी कोई सुनिश्चित कार्मिक नीति नहीं अपनायी गयी। अपने अध्ययन के क्रम में शोधकर्ता ने बहुत प्रबलता के साथ यह अनुभव किया कि लैम्पुस संस्थाओं का प्रबंधतंत्र अत्यंत ढीला है और उसमें कार्यरत कार्मिकगण कार्य-संचालन की सुनिश्चित नीति के अभाव में शिथिल और प्रभावहीन हो गये हैं। लैम्पुस संस्थाओं का प्रबंध तंत्र और कार्मिक प्रशासन ऐसे विषय हैं जिन पर और अधिक जांच और अध्ययन की आवश्यकता है, ताकि इन्हें अधिक प्रभावशील और उपादेय बनाया जा सके।

(4) अपने अध्ययन के क्रम में लम्बे समय तक लैम्पुस संस्थाओं के प्रबंधकों, उस क्षेत्र की ग्रामीण जनसंख्या और ग्रामीण नेतृत्व के निकट संपर्क में रहने का अवसर शोधकर्ता को प्राप्त हुआ। शोधकर्ता ने आनुभविक साक्ष्यों से अधिकांश अध्येताओं की इस प्रेक्षण की पुष्टि होती पायी कि भारतीय सहकारिताएं शीर्ष से तल स्तर तक अत्यधिक राजनीतिकरण से ग्रस्त हैं। ग्रामीण अंचलों में सहकारिता में राजनीतिकरण की प्रवृत्ति अत्यधिक स्पष्ट और प्रबल है। भारत ने ग्रामीण अंचलों के सामाजिक आर्थिक पिछड़ेपन और इन अंचलों में किसी भी संस्था को स्वयं के संसाधनों से संचालित करने की असमर्थता के कारण सहकारिताओं को सरकारी तंत्र और सरकारी संसाधनों पर आधारित किया था। सहकारिता आंदोलन के प्रणेताओं ने यह आशा की थी कि कालांतर में सहकारिताएं स्वयं संसाधनों को जुटाने और अपने प्रशासन के लिए सक्षम हो जाएंगी जिससे सरकारी नियंत्रण धीरे-धीरे स्वयं समाप्त हो जाएगा। समय बीतन के साथ अनेक अध्येताओं व्दारा यह अनुभव किया गया कि भारतीय सहकारिताओं की सरकारी सहायता पर आश्रितता उनमें आत्मनिर्भरता के स्थान पर पंगुता उत्पन्न कर रही हैं। दूसरी ओर, सहकारी समितियों के चुनावों में खुले रूप से राजनीतिक दलों का सहारा लिया जाता है, जिससे चुने गये प्रबंध मंडलों का राजनीतिकरण स्वाभाविक रूप से दृढ़ होता चला जाता है। आदिवासी अंचलों में लैम्पुस संस्थाओं के प्रारंभिक प्रबंध मंडल सरकार व्दारा नामांकित होते हैं। इसमें भी शासन में पदारूढ़ राजनीतिक दल का प्रभाव नामांकन पर स्पष्ट रूप से दिखलायी पड़ता है। शासन के बदलने से प्रायः किसी न किसी बहाने से सहकारिताओं के प्रबंध मंडलों को बदलकर अपने दल के अनुरूप

बनाने की कोशिश की जाती है। शोधकर्ता ने ग्रामीण स्तर पर राजनीतिक और सरकारी प्रभाव को स्पष्ट रूप से अनुभव किया। इससे सहकारिता की मूल भावना खंडित होती है। राजनीति -करण और सरकारीकरण लेम्पस संस्थाओं में प्रजातांत्रिक विकास की बाधाऐं हैं। लैम्पस संस्थाओं के भविष्य के सुधार के लिए इस पक्ष की गहन विवेचना और उचित महत्वारोपण, शोधकर्ता के अवलोकन के अनुसार आवश्यक हैं। अतः आगामी वर्षो में उक्त बिन्दुओं पर शोधकार्य किये जाते हैं, और ठोस अनुशंसाएं की जाती हैं तो निश्चित ही इन बाधाओं को दूर किया जा सकेगा।

(6) शोधकर्ता ने रायगढ़ जिले की लैम्पस संस्थाओं के कार्य मूल्यांकन में यह पाया कि जिले की 44 प्रतिशत इकाइयाँ औसत रूप से हानि में चल रही हैं। जो इकाइयाँ हानि में चल रही हैं उनकी हानि की राशि और आकार काफी वृहद् हैं। शेष 56 प्रतिशत इकाईयाँ लाभ में हैं किन्तु इनके लाभ की राशि और आकार बहुत अल्प है। जहाँ लैम्पस संथाओं के विस्तृत कार्यक्षेत्र में जिन व्यवसायों को सम्मिलित किया गया है वही व्यवसाय यदि निजी व्यापारियों व्दारा सम्पन्न किये जाते हैं तो उनमें विपुल लाभ की प्राप्ति होती है, परन्तु सहकारिता क्षेत्र में आने से हानि उत्पन्न होने लगती है। यह स्थिति एक गंभीर चिंतनीय स्थिति है। शोधकर्ता ने अपने शोध के क्रम में यह अनुभव किया कि सहकारी समितियों की हानि का सबसे बड़ा कारण उनमें व्यावसायिक और आर्थिक सिद्धांतों के परिपालन का अभाव है। सहकारिता मूलतः एक व्यावसायिक संगठन है। यह तभी जीवित रहकर एक अनुकूल स्तर को बनाये रख सकती है जब इसका संचालन व्यावसायिक सिद्धांतों के अनुरूप हो। किसी भी व्यावसायिक आर्थिक संगठन में बाह्य और आंतरिक बचतों का बहुत अधिक महत्व होता है। कोई भी संगठन अपने भौतिक अथवा मानवीय संसाधनों की बर्बादी, दुरूपयोग अथवा अनुपयोग की अनदेखी नहीं कर सकता क्योंकि साधनों का समुचित आबंटन तथा उपयोग एवं उनकी संचालन प्रक्रिया ही हर प्रकार की बचतें प्रदान कर सकती हैं। शोधकर्ता ने यह अनुभव किया कि लैम्पस संस्थाओं में भौतिक या मानवीय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग की परिस्थितियाँ विद्यमान नहीं है जिससे ये संस्थाएं बाह्य एवं आंतरिक बचतों को प्राप्त नहीं कर पाती जिससे इनकी हानि का प्रतिशत बहुत ऊंचा होता है।

लैम्पस संस्थाओं में हानि के उच्च प्रतिशत का एक कारण प्रबंधकीय लागतों का अत्यधिक ऊंचा होना है। प्रबंधकीय लागतों के ऊंचा होने के पीछे उचित कार्य आबंटन का अभाव उचित निरीक्षण का अभाव, अपव्यय एवं बर्बादी, बचतों की कमी, दक्षता में कमी आदि मुख्य कारण विद्यमान हैं। शोधकर्ता ने यह अनुभव किया है कि यदि लैम्पस संस्थाओं को दक्ष प्रबंध

के अंतर्गत व्यावसायिक कार्यकलापों की छूट दी जाए एंव उचित लाभ कमाने तथा समय पर स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेने की स्वतंत्रता दी जाए, तो उनका कार्य-व्यवहार अधिक लाभदायी हो सकता है। इससे भविष्य में लैम्पुस संस्थाएं अधिक व्यवसाय परक होंगी एवं अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करते हुए इतनी मात्रा में लाभार्जन भी करेंगी जिससे वे आत्मनिर्भर हो सकें। यहाँ शोधकर्ता यह व्यक्त करना उचित समझता है कि यदि आगामी वर्षों में इन संस्थाओं के सदस्यों को प्रचार-प्रसार व शिक्षा के माध्यम से जागृत किया जाय तथा व्यवसाय में वृद्धि हो सके और ये संस्थाएं आत्मनिर्भर हा सके अतः इनकी व्यवसायिक क्षमता, बढ़ाने उपलब्ध साधनों के अधिकतम उपयोग का नवीनतम रीतियों के क्रियान्वयन, निश्चित कार्मिक नीति व प्रशिक्षण व्यवस्था आदि जैसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर शोधकार्य कराये जा सकें तो ऐसे अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों तथा इनके आधार पर की गयी ठोस अनुशंसाओं के क्रियान्वयन से इन्हें ठोस व्यावसायिक धरातल प्रदान किया जा सकेगा ताकि ये आगामी वर्षों में व्यवसाय में वृद्धि कर आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हो सकें।

(7) रायगढ़ जिले की लैम्पुस संस्थाओं के प्रकरणों की विवचेना में शोधकर्ता के अवलोकन में एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह सामने आया कि जिले की लैम्पुस संस्थाओं के लिए योजनाओं के निर्माण में इन संस्थाओं की व्यक्तिगत परिस्थिति-जन्य आवश्यकताओं, संस्थाओं के आंतरिक स्वरूप और संरचना, संस्थाओं के कार्य क्षेत्र तथा संस्थाओं व्दारा सेवित जनसंख्या के आकार पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के लिए बनायी गई कार्य योजना इसका ज्वलंत प्रमाण है। इसे इस अध्ययन के अंतर्गत तालिका रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इस कार्य योजना में विकास खण्ड स्तरीय एवं हाट स्तरीय सभी प्रकार की समितियों के लिए विभिन्न उद्देश्यों के लिए, उनकी पारिस्थित्यिक विभिन्नताओं पर बिना ध्यान दिये हुए, एक समान राशि आबंटित की गयी हैं। इस प्रकार की कार्य योजना लैम्पुस संस्थाओं के तलीय स्तर से पृथक होने का सूचक है, जिसमे विभिन्न संस्थाओं के कार्यक्षेत्र की वास्तविक आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। शोधकर्ता के मतानुसार इस स्थिति को बदलने की महती आवश्यकता है और लैम्पुस संस्थाओ को क्षेत्र की वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति के अपने कर्तव्य का परिपालन करना है। शोध कर्ता यह आशा रखता है कि लैम्पुस संस्थाओं के इन ज्वंलत पक्षों पर विवेचकों व्दारा और अधिक सामग्री एकत्र की जाये एवं भविष्य में लैम्पुस संस्थाएं और अधिक उपयोगी बन सके। इस ओर

प्रयास किये जा सकें। यदि आगामी वर्षो में उक्त महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर कार्य होता है और शोध के आधार पर प्राप्त निष्कर्षो के अनुसार की गयी सटीक अनुशंसाओं का क्रियान्वयन किया जा सकेगा तो शोधकर्ता निश्चित ही अपने प्रस्तुत शोध प्रबंध को सार्थक समझ सकेगा तथा इनके आधार पर लेम्पस संस्थाओं को संगठन, प्रबंध, वित्तीय मामलों, व्यवसाय, कार्मिक प्रबंध आदि जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं को सशक्त कर इन्हें देश के तीव्र आर्थिक विकास की राष्ट्रीय धारा में जोड़ा जा सकेगा और इनके महत्वपूर्ण योगदान को चिरकाल तक याद रखा जा सकेगा। इतना ही नहीं इस आदिवासी एवं पिछड़े वर्ग के लोगों का भी अपेक्षित आर्थिक विकास किया जा सकेगा, जो कि हमारी आर्थिक स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु अभिन्न अंग हैं।

***